वर्ण बिनोद।

नव खण्डों में से तीसरा खण्ड।

जिस को।

र्णव कोष" "चक्की विलास" "नीतिसार" "अमीन्दा लिका" "महाजनी लिखा" "खितमाप" "भाषातत्वदी पिका" "छोटावस्तुविचार" "चक्रदीपिका" "पदार्थ" "केथीवर्णमाला" आदि के लेखक बाबू शिवरामसिंहात्मज चण्डीप्रसाद सिंह बीरपुर ने संग्रह किया।

सज्जनशिरोमणि बाबू द्वारिका प्रसाद लाल डिप्युटी इनस्पेक्टर मुंगेर की आज्ञानुसार छापागया

पटना
"खड्गविलास" छापाखाना, (बांकीपुर) में
साहब प्रसाद सिंह ने छापकर प्रकाश किया।

1883

भ.षाप्रका

नाम एक मासिक पत्र-नीति, सद्

उद्भिज, शिल्प, नाटक, प्रसिद्ध लोगों का जी

रित, समाचारावली और अनेक उत्तम २

से सम्भूषित होकर हर महीने की पहिली

काशित होता है दाम डाकव्यय सहित केवल

मात्र वार्षिक रक्खा गयाहै सच तो यह

ऐसा उत्तम और इतना सस्ता हमारे बि

हिन्दी का कोई पत्र नहीं है । जिन विद्यार

त्साहियों सज्जनों को ग्राहक होना हो ह

पत्र लिखें ।

खड्ग विलास प्रेस में अनेक विषय की उत

त्तम् नई २ पुस्तकें छपकर तय्यार हैं सूचीपत्र

खने से मूल्य मालूम होगा ॥

विहार मिडल वोर्न और अपर प्राइमरी

की सब पुस्तकें मिल सक्ती है ॥

इमतिहान के लाइक अनेक छोटी छोटी

कें कैथी और नागरी में प्रस्तुत हैं ॥

खड्गविलास प्रेस
बांकीपुर } साहबप्रसाद सिंह

चंडीप्रसाद सिंह, सम्पा०

वर्णविनोद।

(तीसरा खण्ड)

वर्तमान समय में हिन्दी पत्रों के सम्पादक कैसे होने चाहिये।

तो प्रसिद्ध है कि देश भाषा की उन्नति से सर्वोन्नति भाषा की उन्नति के लिये दो मुख्य उपाय हैं। अर्था तो देश हितैषियों को बद्ध परिकर होकर अन्यान्य भारत सी भ्रातृगण के मन को अनेक यत्न और वक्तृता करके इस र आकर्षित करना चाहिये। दूसरे विविधि प्रकार की पुस्तकें (अन्यान्य भाषाओं से) इस भाषा में अनुवाद की जांय, और एक से एक उत्तम और सर्व विषयों, रसों, उपदेशों, और समाचार से पूरित (दैनिक, सप्ताहिक, पाक्षिक, और मासिक) पत्र और पत्रिकायें प्रकाशित हों। सो बड़े आनन्द की बात है कि इन दिनों हमारे भारत में यह सब वस्तु प्रस्तुत हैं और होती जाती हैं। यद्यपि ये सब उपाय उपयोगी हैं और एक बिना एक से काम नहीं चल सक्ता तथापि हम कह सक्ते हैं कि समाचार पत्रों से बहुतही सहायता मिलती है और जिस देश में इसका अधिक प्रचार है उस देश में सर्था उन्नति ही उन्नति दीखती है, ऐसेही विश्वास होता है भारतवर्ष के भाग्य भी अब उदय हुये।

अन्य उपायों के अतिरिक्त इस अन्तिम उपाय में अबतक दोष पाया जाता है। अर्थात् बहुधा पत्र सम्पादक यह नहीं जानते कि "सम्पादक कैसे होने चाहियें"। अब हम

अपनी समझके अनुसार बताते हैं कि वर्तमान काल में दे
पत्रों केलिये कैसे सम्पादकों की आवश्यकता है ? और
विद्यानुरागी सभ्य मण्डलीभूषण देश हितैषी महाशयों
प्रार्थना करते हैं कि जहां कहीं अनुचित हो पत्रद्वारा ह
को बता दें, क्योंकि यह लेख केवल देशहितार्थ है, और
धर्मी वा अपनी विज्ञता दिखाने के लिये नहीं है।

यह तो प्रत्यक्षही है कि सम्पादक विद्वान होने
पर यहां यह जानना अवश्य है कि किन२ विद्याओं
ता और किन २ में जानकारी मात्र चाहिये ?

१—संस्कृत व्याकरण का बल जिसो शुद्धाशुद्ध का निश्च
हो सके, और शब्दों की जड़ और ठीक अर्थ का ज्ञान हो।
तथा धर्म ग्रन्थ और नीति आदि के समझने की शक्ति रखनी
अवश्य है।

२—देश भाषा (हिन्दी) उत्तम रीतिसे जाननी चाहिये।
इन दिनों इस भाषा की अनेक रीतें अनेक नगरों में प्रचलित
हैं, उन सब को जांचने और उत्तम, मध्यम, निकिष्ट ठहरा
की शक्ति रखनी चाहिये। गद्य और पद्य दोनों लिखने और
समझने के सिवाय काव्य, और नाटक आदि के भेद जानने
चाहिये, और अनेक समाचार पत्र और भांति २ की पुस्तकों
(साहित्य, सङ्गीत, शिल्प, नाटक, वैद्यक, रसायन, कृ
इतिहास, और परिहासादि) को देखते रहना चाहिये।

३—इस समय के लिये यदि हो सके तो अच्छी अंगरे
अवश्य जाननी चाहिये जिससे अंगरेजी पत्रों को भली भां
समझकर उनके तात्पर्य, चतुराई (पोलिसी) आदि को जान

और सहज में उसे अपनी शुद्ध भाषा में अनुवाद कर सकें। यदि यह न हो सके तो इतनी अंगरेजी तो अवश्यही जाननी चाहिये जिस्से बहुत से प्रचलित शब्दों का बोध और अंगरेजी पत्रों के कुछ तात्पर्य का ज्ञान होसके।

४—वर्तमानकाल में यद्यपि विशेष फारसी की आवश्यकता नहीं है तो भी उर्दू जाननी अवश्य है क्योंकि अभी इस्से अधिक सहायता मिलने की सम्भावना है। यदि बहुत नहीं तो थोड़ी उर्दू अवश्य चाहिये।

५—व्रजभाषा, बंगाली, पंजाबी, गंवारी, महाराष्ट्री और नैपाली आदि भाषाओं का भी कुछ २ ज्ञान होना अवश्य है।

६—अच्छे बुरे, विद्वान मूर्ख, नये पुराने, हिन्दू, मुसल्मान, क्रिस्तान, अंगरेज, आदि और सब देशों और जातियों के मनुष्यों से मिलजोल रखना चाहिये।

७—देश, विदेश, नगरों, और बहुधा गावों में घूमना फिरना और सब के चाल व्यवहार धर्म निष्ठा कर्त्तव्य आदि को देखना सुनना चाहिये।

८—सब से मुख्य यह है कि एडिटरों (सम्पादकों) को सच्चा धर्मज्ञ, देशहितैषी, उचितवादी, निर्पक्षपाती, सहनशील, मधुरभाषी, और मिलनसार होना चाहिये। इनके विरुद्ध दोषों से अलग रहना सम्पादकों का मुख्य कर्त्तव्य है पूर्वोक्त गुणों से पूर्ण होने पर लेख प्रनाली पर विशेष दृष्टि रखनी चाहिये अर्थात् उपयोगी लेखों में यथा सक्य सरलता मनोहरता और एक प्रकार से जाति और देश की प्रीति टोसिमान रहे और जो बातें हों ऐसे ढंग से समझाई जांय कि

जिससे निपढ़ लोगों के चित में बैठजांय। इसका कारण यह है कि हम जहांतक दृष्टि फैलाकर देखते हैं इसदेश के सब स्थानों (बड़े२ नगरोंमें भी) में सौ में दस पांच ऐसे मनुष्य ठहरते हैं जो पत्रों के निर्माण होते और विद्वानों के इस परिश्रमका तात्पर्य समझते हों यहां तक कि जोलोग शिक्षित समझे जाते और राज दर्बार (कचहरियों) तक प्रवेश रखते हैं वे भी मूर्खता बस इसे एक खेल और पाखंड जानते हैं। ऐसी अवस्था में यदि किसी ने पत्र देखाही नहीं वा देखकर इसका तात्पर्य भी न समझा अथवा किसी प्रकार से समझ बूझकर भी लोग अधिक रुष्ट हो गये तो यह सब परिश्रम व्यर्थ हुआ।

बस जब मनोहर लेख होंगे तो अवश्यही लोगों को पढ़ने कि रुचि होगी और फिर देखने की अभिलाषा बनी रहेगी, फिर सरलता होगी तो सब उनके अर्थ समझ लेंगे और ऐसेही जब प्रीति भाव से नम्रता पूर्बक कोई उतम बात समझाई जायगी तो वह बात अवश्य पाठकों के मन को अपनी ओर आकर्षित करेगी। इसके बिरुद्ध जब बहुधा पत्र विज्ञता दिखाने के लिये संस्कृत के बड़े२ क्लिष्ट शब्दों फ़ारसी और अरबी के मुशकिल अलफाज़ से भरे हुये और लेख व्यंग, कटाक्ष, पक्षपात, असभ्यता, और अनैक्य युत पाये जाते हैं तो बहुत ही खेद होता है उत्साह घट जाता है और बंधी हुई आशा भंग हो जाती है। अतएव हम अपनी बुद्धि के अनुसार प्रिय सम्पादक गण के हितार्थ कुछ लिखकर प्रकाश करते हैं और आशा रखते हैं कि देश हितैषी और बिज्ञ सम्पादक बृन्द इ-

सका कुछ दूसरा अर्थ न समझकर यदि उचित जानें इस पर चलें और इसकी समालोचना करके हमको कृतार्थ करें। अन्तमें फिर भी कहते हैं कि कुछ अनुचित हो वा कोई बात छूट गई हो तो पत्र द्वारा सुधारदें।

—※—

सम्पादक समाज के नियम।

सम्पादक समाज के विषय में जो मेरे उद्देश वा प्रस्ताव हैं वे निम्न वाक्यश्रेणियों से विदित होंगे -----

१—सम्पादक समाज का होना अत्यावश्यक है, कारण 'सब मिल करिये काज' यह लोक प्रसिद्ध ही है।

२—इस में अभी केवल हिन्दीपत्रों केही सर्व संपादकों की एक वाक्यता होनी चाहिये।

३—संपादक समाज का प्रथम कर्तव्य यही है कि जितने पत्र अब अर्थात् १९४० तक प्रचलित हैं उनके नाम, धाम दाम और ग्राहक संख्या आदि का विचार।

४—द्वितीयत: उन उन पत्रों के सांप्रतिक संपादक वा व्यवस्थापकादि से वह कार्य्य किस रीति से चलता है इस का निरीक्षण।

५—सांप्रतिक संपादकों की दृष्टि द्रव्य पर विशेष है वा देश कल्याण के गाने पर है?

६—इन में किस किस का विशेष किस किसके साथ किस किस कार्य्य वश से है?

७—यथार्थ, निष्पक्षपात और देशहित बुद्धि से इनको उत्तेजन देनेवाले कोई है वा नहीं ?

८—इनके खर्च की व्यवस्था कैसी और किस रीति से वह होती है ?

९—प्रतिवर्ष नवीन पत्र प्रसिद्ध होते हैं और ग्राहकगण त्रस्त होते हैं सार कुछ नहीं निकलता इसलिये प्रत्येक जिले का एक एक विस्तृत और माननीय स्पष्ट वक्ता पत्र हो । और बाकी के उसके पूरे सहायक हों ।

१०—इस एक पत्र केलिये उसके अन्तर्गत पत्रही वा पत्र संपादकही करेस्पांडेंट का काम दें ।

११—जो प्रचलित पत्र हैं उनकी ग्राहक संख्या बढ़ाई जाय । वरन लाइफ ग्राहक की एक श्रेणी नवीन कायम कर उनके लिये अर्द्ध वा चतुर्थांश मूल्य किया जाय ।

१२—प्रतिवर्ष पारीपारी से एक एक का दौरा सर्वत्र हो और उसका खर्च जिले २ के संपादपत्र पत्र पर रहे ।

१३—प्रत्येक विषय पर एकानुमति से यद्यपि लेख न हो तथापि वादविवाद आग्रह छोड़ और सभ्यता अवलंबन कर हो ।

१४—जो असभ्य व्यवहार करे उसपर आक्षेप करने का अधिकार समाज को रहे ।

१५—यह अधिकार प्रथमही सभों के हस्ताक्षर पूर्वक सभों को मिलना चाहिये ।

१६—समाज संस्थापन के अनन्तर कोई नवीन पत्र प्रचार करे तो समाज की अनुमति बिना न करे ।

१७—कार्य प्रारम्भ होनेसे गवर्नमेंट का साहाय्य सहज है।

१८—जो संपादक दौरा करे उस का कार्य यही रहे कि प्रत्येक स्थान की अन्तरीय स्थिति देख कर उस उस जिले के पत्र द्वारा बराबर प्रकाशित करे।

१९—इस प्रवास में यदि संपादक को कुछ प्राप्ति हो तो वह भी समाज फण्ड जमा हो।

२०—दौरा पूरा होने पर पृथक भाव से उसको अपना रिपोर्ट अवश्य देना चाहिये।

२१—समाज का प्रेस प्रत्येक जिले में रहे और आन्तरीय प्रदेश के यदि पत्र हों तो वे उसी में छापने का प्रबन्ध हो।

२२—पत्रों के ग्राहकों का बहुत कठिन नियम रहे और बिना मूल्य पत्र का सार तत्त्व भी कोई जानने न पावे।

२३—दौरे पर यह भी एक महाकार्य हो कि सर्व पत्र को स्थान स्थान में पहुंचकर उसका सारांश अज्ञ जनों को समझाना।

२४—विशेषमें: टीचर लोगों से मेल रखकर धर्मशिक्षण और भारत रामायणादि इतिहास शिक्षण का प्रचार करने का उद्योग।

२५—संवादपत्र में एक शीर्षक संपादक समाज के नाम का रहे और उसके विषयक प्रस्ताव बराबर उसमें आया करे

२६—सब से अन्तिम वा आदिम यह है कि सब कोई स्वार्थ छोड़ केवल परार्थ दृष्टि से सर्वात्मा सर्व दर्शी नित्य सत्य जगद्व्यापि की शपथ कर इस कार्य में हाथ लगावें इत्यादि।

संबादपत्र संपादन करने वालों को उचित है कि इन सोलह बातों पर सदा ध्यान दिये रहैं जिन्हें कि सुलभ समाचार मे मैं यहां पर उद्धृत करता हूं ॥

१ ठीक संबाद जान करके उस पर अपना पक्ष प्रकट करना तदन्तर उसे बर्णन करना ॥

२ बातें बहुत बढ़ा कर न बोलना ॥

३ खास किसी एक मनुष्य का चरित्र लेके खोट बिनोद न करना ॥

४ दुर्बल शत्रु को दोष की अवस्था में पाके अनसोहन बातें सुना कर उसे दुःखित करने अथवा उसे चिढ़ाकर आप आनन्दित होने की चेष्टा छोड़ देनी चाहिये ॥

५ अपने मन का बास्तविक दुष्ट अभिप्राय गुप्त रखने के निमित्त छिपे छिपे किसी के विरुद्ध कपट भाव से स्पष्ट बातें न बोलना ॥

६ जिस बिषय का स्थिर परिष्कृत सिद्धान्त न पाना उसे पत्र में न प्रकट करना ॥

७ अपने विरुद्ध जो जो चोखे और असल पक्ष कहीं से पाना अथवा अन्य किसी संबाद पत्र में लिखे देखना तो उन्हें अपने पत्र में उद्धृत करके प्रकट करना ॥

८ मन में किसी से अकस न रखना ॥

९ लिखना वही ठीक है जिसे शत्रु भी बांच के मुंह न बिचका कर प्रत्युत उसके द्वारा अपने को उपकृत बोध करे ॥

१० तेज कलम चलाना अथवा सुन्दर बातें बनाना अपना प्रधान कर्म न समझना ॥

११ लोगों के बीच प्रशंसा पाने निमित्त बहुत का कष्ट पटाना अच्छा नहीं।

१२ मनुष्य का बहुत मान न दया के काम पड़ने पर उस के कार्य भर का विवरण कर देना काफी है॥

१३ सत्य को प्राण से अधिक प्यार करना निर्भय होकर बोलना पर शान्ति और उदारता के साथ॥

१४ देश को सुधारना अपना प्रधान उद्देश्य समझना उस विषय का जो कुछ सर्वसाधारण मत पाना ऊपर प्रकाश करना और जो कुछ भाव और विवेचना उस में ताको देखना नीचे लिख देना॥

१५ बनाने की इच्छा छोड़ कभी किसी के बिगाड़ने की इच्छा मन में न उठने देना।

१६ जब कुछ लिख कर प्रकट करना तो समालोचना करने वालों का मुख बन्द रखने के निमित्त नहीं किन्तु अपनी भूल सुधार देने निमित्त अनुरोध करना॥

विवेकी, भद्र, न्यायपरायण, निरपेक्ष, संपादक होने की इच्छा रक्खे तो इन सोलहों बातों को चित्त पर चढ़ाये रहे आशा है कि हमारे भाई और२ सम्पादक लोग भी इस लेख को आदर पूर्वक ग्रहण करेंगे न कि इससे अपमान अथवा लज्जा बोध करेंगे इन बातों को पुरानी लिखी समझ कर उपेक्षा करनी उचित नहीं वरन आदर्श स्वरूप प्रतिक्षण चित्त में चढ़ायेही रहने में हमारा कल्याण और भलाई है, आशा कि हम सब आदर्श के समान इन सब बातों को सदा अपनी स्मृति पथ आरूढ़ रक्खें और काम पड़ने पर इन्हीं की ओर निहार कर लेखनी चलायें॥

मित्रता ।

परस्पर मित्रता से अनेक प्रकार के उत्तम लाभों की प्राप्ति होती है परंतु मनुष्यों को मित्रता करने के पूर्व इस वार्त्ता का भी विचार कर लेना उचित है कि जिस्से हम मित्रता करनी चाहते हैं वह हमारी समता रखता है या नहीं क्यों कि मित्रता तीन प्रकार की होती है एक भय से दूसरी अर्थ से तीसरी ममता जिस्से परस्पर का उपकार होना सूचित होता है परन्तु इन तीनों में से ममता की मित्रता जो परस्पर उपकारिणी होती है और अति उत्तम सुखदाई है ऐसी दूसरी नहीं अब यह न जानना चाहिये कि मित्रता का उपकार केवल इसी काल के मनुष्यों में सूचित है किन्तु पुस्तकों के और रामायण हितोपदेश आदि ग्रंथों के द्वारा निश्चित है कि यह विषय केवल इसी काल के साधारण मनुष्यों ही को लाभ दायक नहीं है किन्तु त्रेता इत्यादि युगों में भी यह विषय प्रचलित था साधारण मनुष्यों का दृष्टांत तो यह है कि एक मनुष्य अपने मित्र की परीक्षा के निमित्त अर्ध रात्रि के समय मित्र के द्वार पर जाकर उसका नाम लेकर उच्च स्वर से पुकारा उसका मित्र जो घोर निद्रा में निमग्न था कुसमय अपने मित्र का शब्द श्रवण कर शीघ्र उठ बैठा और चित्त में विचार करने लगा कि ऐसे कुसमय में मित्र के आने का क्या कारण है तथापि शैय्या का त्याग कर के उठा और कटि बांधी एक तोड़ा रुपये का और नग्न खड्ग हस्त में ले और अपनी स्त्री को संग लेकर नीचे उतरा और गृह के कपाट खोले मित्र से पूछा कि हे मित्र ऐसे कुसमय में तुमारे आगमन

का क्या कारण है यदि धन की इच्छा है तो धन यह लीजिये और जो किसी शत्रु का भय है तो मैं खड्ग से उससे युद्ध करने को उपस्थित हूं और जो स्त्री की इच्छा हो तो यह विद्यमान है मित्र बोला नहीं२ मुझ को इन तीनों में से किसी की इच्छा नहीं है मैं केवल तुमारे देखने के हेतु स्वदेश से चला आता हूं और केवल आपकी भेट के धन की प्राप्ती के हेतु आया था सो प्राप्त किया अब जाता हूं निदान अपने मित्र को परीक्षा में सब प्रकार से उत्तम पाया और प्रसन्नता पूर्वक अपने गृह पर चला गया मनुष्य के मित्रता के वर्णन का इतिहास तो यह है पर ग्रन्थों के द्वारा कई इतिहास प्रसिद्ध और विख्यात हैं पर उन में से एकाध उदाहरण के हेतु लिखते हैं । ध्यान देने और बिचार करने की वार्त्ता है कि यद्यपि राजा रामचन्द्र जी ऐसे पुरुषार्थी और बलवान थे कि आपही मंडलीक महिराज रावण ऐसे प्रतापी का बध कर सकते थे और किसी के सहायता की उनको आवश्यकता न थी परन्तु केवल मित्र लाभ का फल प्रगट करने के हेतु सुग्रीव से मित्रता करके मित्रता का फल और उपकार संसार को देखलाया तो मनुष्य यह न जाने कि मित्रता का उपकार और सहायत्व केवल साधारण निर्बल और निर्धन संसारिक मनुष्यों ही को आवश्यक है, किन्तु नहीं अतुल बलवान को भी मित्र के उपकार की इच्छा होती है यह वार्त्ता विदित हो कि अति बलवान और सहस्र कुबेर के सदृश धनवान हो तथापि मित्र के सहायता की इच्छा होता है देखिये यदि सुग्रीव से रामचन्द्र की मित्रता न होती तो बाली जो सु

थेव का परम शत्रु था जिसके भय से सुग्रीव सब भुवन में भ्रमण करता फिरा कहीं उसको बैठने का स्थान नहीं मिला निदान श्रमित होकर ऋष्यमूक पर्वत पर रहता था । यदि श्रीराम जी से सुग्रीव की मित्रता न होती तो बाली का बध और किष्किन्दापुरी का राज्य और लंका के विजय का सुयश सुग्रीव को क्योंकर प्राप्त होता । दूसरे श्रीरामचन्द्र जी को सुग्रीव की मित्रताई से क्या लाभ हुआ उसका वर्णन ॥

मित्रता का फल परस्पर दोनों को अवश्य प्राप्त होता है यदि श्रीरामचन्द्र सुग्रीव से मित्रता न करते तो अठारह पद्म यूथप सहायक और अतुलित बलवान श्रीहनूमान ऐसे बीर की प्राप्ती काहे को होती यदि यह न होते तो किसकी सामर्थ्य थी कि समुद्र उल्लंघन करके लंका में जाता और श्रीजनक नंदिनी को धैर्य देकर और रावण ऐसे प्रतापी को जिसकी आज्ञा संसार मानता था उसकी पुरी को जला कर उसके पुत्र आदि मार के चला आता और जिस समय इन्द्रजीत ने श्रीलक्ष्मण को शक्ती मारी थी श्रीहनूमान जी का ही काम था जो रात्रि भर में उत्तराखण्ड से औषध लाकर श्रीलक्ष्मण जी को कष्ट से छोड़ाया यह सब लाभ श्रीरामचन्द्र जी को केवल सुग्रीव ही से हुआ ॥

हमारे लिखने का मुख्य आशय यह है कि आज काल इस देश में मित्रद्रोही और छली विशेष होते जाते हैं अपने थोड़े से लाभ के हेतु दूसरे की सर्वस्व हानि करते हैं ॥

निदान पश्चाताप है कि इस हिन्दुस्तान पर भगवान कब दया करेंगे और इनमें आपस में संमत रखने की रीति

कब निवृत होगी और इसका प्रताप कब जागेगा यद्यपि इस देश का परिपालन करने वाला ऐसा मिला है कि भूता न भविष्यति अब जो प्रजा ऐसी ही रह जाय तो पारस के परस का परम गुण चला जाय क्योंकि उसे लोहा मिलना चाहिये तो स्पर्श का गुण प्रगट होता है अथवा लोहे की संगति अव्यवहित हो तो भी इस स्पर्श का गुण प्रगट हो सकता है ये प्रजा अपने कपट रूपी व्यवधान के पट को निपट लटकाये हुए अज्ञान के विटप में उलूक से उलटे लटक रहे हैं रात तो इनका दिन और दिन रात हो रहा है देखिये इन्हें ईश्वर इस मोह के फंद से कब मुक्त करता है एतदर्थ हम अपने स्वदेश वासियों से सविनय निवेदन करते हैं कि वे इस दुष्ट भाव का त्याग करके परस्पर प्रेम रक्खें ।।

बिना बिचारे जो करै सो पाछे पछताय ।

देखिये यह कैसी मूर्खता की बात है कि लोग बहुधा बिना सोचे समझे काम कर बैठते हैं और पीछे अपनी हंसी कराते हैं ठीक है आतुरता बड़ी बुरी वस्तु है थोड़ी सी शीघ्रता और जल्दी में पड़कर कितने लोग बड़ी हानि उठाते हैं।

सोचने की बात है कि फल कार्य्य की सिद्धि रूपी लता में लगता है और वह अपने अनुसार परिणाम पाकर पकता है, यदि उकता कर कोई उसकी परिणामावस्था तक न ठहरे और चाहे कि बीच में पका फल हाथ लगे तो कहिए उससे नीच अब कौन होगा। कि पहले किस मनोरथ से उस लता को उसने लगाया था और कैसे २ परिश्रमों से वह का-

र्हा २ से मंगाई गई थी और फिर उसके फूलने और फलने के निमित्त कैसे २ उपाय और यत्न करने पड़े थे परिणाम को दशा पूरी नहीं पहुंचने पाई कि लता से कच्चा फल तोड़ लिया गया और गप किया गया तो वह स्वाद और गुण तो बैठा रहे पहले तो मुख्य उस आतुर मनुष्य की जिह्वा बिगड़ गई और शरीर में प्रत्युत नये रोग हो जाने की जड़ उत्पन्न हुई प्रशंसा के पलटे उसने उस उत्तम फल की निन्दा करनी आरम्भ की 'बन्दर आदि का स्वाद क्या जाने' यह कहवित सामने आई जन्म का किया धरा व्यर्थ हुआ कहते हैं कि तांत बाजी राग बुझा, यार लोग ताड़ गए थांखे की टट्टी का आड़ न रह गया पूरे बसन्त बनने में अब क्या रहा दया करके किसी ने मुंह पर न कहा तो क्या पीठ पीछे व-ही लू लू लगा है औतले की कौन कहे वह भी नहीं छोड़ता है जो सगा है जो हो आप तो अपने में सूर हैं क्यों नहीं वह शूर नहीं तो ये अपने हृदय की आंखों के सूर तो हैं ही है यद्यपि भरपूर लगती और बैठती जाती है तौ भी आप पर कहां असाती है असर और संस्कार तो अलग और किनारे रहे स्पर्श तो होताही नहीं ' सूर दास की काली कमरिया चढ़े न दूजो रङ्ग' मानों इन्हीं पर फबती। हम तो कई बार इनको सोचाय समझाय चुके हैं पर इनके कान का मल नहीं निकलता जान पड़ता है कि अब अन्त के दिन आ गए हैं क्योंकि ऐसा लिखा है कि "दीपनिर्वाणगन्धञ्च सुहृद्वाक्यमरुन्धतीम्। न जिघ्रन्ति न शृण्वन्ति न पश्यन्तिगतायुषः॥" सच है जब अन्त के दिन आते हैं चिवंटी के भी पर जम जाते हैं प-

इन्हें तो बिचारी पैर से चलने कोही झकती थी अब उड़ने लगी क्या पूछते हो पृथ्वी पर चलने में तो उस की यह दशा थी कि दबते ही काटती थी अब उड़कर बिना दबे दबाये काटने का उत्साह बढ़ा भला जब इस अवस्था को पहुंचती फिर काहे को बचने पाती है बात की बात में अपना प्राण गवां बैठी। ठीक है अन्त के दिन ऐसेही होते हैं मत मारी जाती है पत रहने नहीं पाती गत बिगड़ जाती है सत छूटता है शरीर का बन्द २ टूटता है कमर कच्चो घोड़े के समान मरमरा कर नीचे धंस जाती है पीठ कुबड़ी और दृष्टि मोटी होकर खोटी २ बातें कराती है बड़ी बस्तु छोटी दिखाई देती है कहां तक कोई लिखेगा जब इन्हीं ने अपने ही परिणाम को पहले से न सोचा तो बातों के परिणाम को कौन बिचारता और सोचता फिरता है जो मन में आया कर बैठे उन्हें संसार और दुनियां की परवाह क्या है अपनी बिद्या में कैसे पूरे हैं जैसे बहुत अंधों में काना रहता है दाना हैं तो आप हैं और बड़े २ बिज्ञों के बाप कहे तो आपही जो लिखेंगे पढ़ेंगे करेंगे करावेंगे उसमें किसकी शक्ति और सामर्थ्य है कि सिर हिला सके यों भी कोने अंतरे में चाहे पड़ा बके सामने और आगे की तो दिखाई सुनाई ही नहीं देती अंधों को जूआ माफ आप ऐसेही हैं क्या कहना और कोई गुण आप में है अथवा नहीं घमण्ड और अहंकार तो पूरा नस २ में भरा पड़ा है जिसने आपके मनको कछुये की पीठ वा ईज्ञानगर के बैलों के सींग अथवा धवल गिरि और मौण्टएवरेस्ट की चोटी बना दिया है जिसमे बुद्धि

मत मोटी पड़ गई है कि खोटी और छोटी बात चट पट चित्त पर चढ़ जाती है और उत्तम और सूक्ष्म पर दृष्टि कभी लगती ही नहीं परमेश्वर की गति किसी से जानि नहीं जाती विद्या धन और प्रतिष्ठा चाहे किसी को दे भी दें पर जिसका नाम शुद्ध विचार है उसे विरला ही पाता है। संसार में यह बड़ा चमत्कार है कि अंधेर भी चल जाती है पर इतनाही विशेष है कि वह जे दिन चलै ते दिन अंत मे फिर वही होता है। उघरे अंत न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावण राहू॥ इस से सिद्ध हुआ कि इसमें पहले तो उन्ही की हानि होती है चाहे वह हानि उनसे समझते बने वा न बने क्योंकि वे तो पतङ्ग के समान आकाश में चढ़े हैं दूसरे उनको देखा देखी और लोग भी वैसाही करने लगते हैं यह एक बड़ी भारी हानि संसार की होती है। रावण दुर्योधन और पृथ्वी राज आदि बड़े २ राजा लोग बिना किसी बात के परिणाम सोचे काम करने से अपनी और हंसी कराकर इस संसार में उदाहरण हो चुके हैं अब आप क्यों व्यर्थ परिश्रम करके आप से आप इस बात के उदाहरण बनने में प्रयत्न करते हैं।

हो चुका सबने जान लिया कि आप ऐसे हैं बस हुआ अब आप अधिक परिश्रम मत कीजिये दयाकर काम चैन से लम्बो तान पैर फैलाकर आनन्द उड़ाइये जो कुछ ईश्वर के यहां मिला है उसमें बाधा मत डालिये आप वीरबल नहीं हैं कि बिना परिणाम सोचे जो कुछ मुंह से निकालियेगा वाणी से तीतर बन कर निकल आवेगा। क्योंकि ऐसा लिखा है॥

'लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्त्तते । ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति ॥'

कहिये आप किस में हैं पहले में अथवा दूसरे में क्योंकि इस समय दूसरे में का कोई दिखाई नहीं देता हां यदि आप दूसरे में अपने को गिने तो कलि महाराज का राज छोड़कर आज कहीं दूसरे राज में जा बिराजिये नहीं तो परिणाम सोच कर काम किया कीजिये जैसा लिखा है ॥

सुजीर्णमन्नं सुविचक्षणः सुतः सुशासिता स्त्री नृपतिः सुसेवितः । विचार्य्य प्रोक्तं सुविचार्य्य यत्कृतं सुदीर्घकालेऽपि न याति विक्रियाम् ।

बिना बिचारे जो करै सो पाछे पछिताय । काम बिगारे आपनो जग में होत हंसाय ॥ जग में होत हंसाय चित्त में चैन न पावै । खान पान सनमान राग रङ्ग मनहि न भावै ॥ कह गिरधर कविराय दुःख कछु टरै न टारे । खटकत है हिय मांहि कियो जो बिना बिचारे ॥

समय का विचार ।

यद्यपि समय का ग्रहण इङ्गलण्डीय विज्ञ लोग इन काल में ग्रीनिच से करते हैं और लण्डन को प्रधान नगर मानकर समय निकालते हैं । परन्तु यहां पर स्वदेशियों के सुबीते के कारण कलकत्ता को जो इस वर्त्तमान अवस्था में हमारे इस भारतवर्ष की राजधानी है मुख्य मानकर क्रमशः और २ देशों का समय लिखागया है इस में कुछ सन्देह नहीं उचित है, क्योंकि पू० दे० और प० दे० तो इनने भी ग्रीनिच से माना है ॥

जब कलकत्ता में दो पहर को १२ बजते हैं तो अन्य देशों में क्या समय होगा, नीचे लिखे हुये चित्र को देखो ॥

"कलकत्ता समय दिन को १२ बजे"

नामनगरों का	घण्टा	मिनठ	समय	किस देश की राजधानी है
पेकिन	१	५२	दिन	चीन
सिड्नी	७	१२	रात	न्यूसाउथवेल्स
न्यूयार्क	१	१०	रात	अमेरिका
डब्लिन	५	३१	दिन	आयरलाण्ड
एडिम्बरा	५	५४	दिन	स्काटलाण्ड
लन्डन	६	६	दिन	इङ्गलैन्ड
पेरिस	६	१६	दिन	फ्रान्स(फरासीस
रूम	६	५६	दिन	इटली
बर्लिन	७	०	दिन	जर्मनी
केप	७	११	दिन	दक्षिणआफ्रिका
एथेन्स	७	३०	दिन	ग्रीक(यूनान)
स्मरना	७	५४	दिन	प्राय: द्वीप
कुस्तुन्तुनियां	८	१	दिन	टरकी(तातार)
सेंटपीटर्सबर्ग	८	७	दिन	रूस
मास्को	८	३६	दिन	तत्रैव(प्रा० रा०
बम्बई	११	३	दिन	हिन्दुस्तान में एक हाता
मदरास	११	२८	दिन	तथैव

इस भारतवर्ष के केवल २ हाते इस कारण से लिखे गये

है कि जो नगर जिस हाते में है उनका उस हाते के अनुसार निकाल सकते हैं और उनमें भेद भी कम है।

शिवरात्रि को भांग पीने का बिचार ॥

हमारे हिन्दुओं में सहज रीति से यह बात प्रचलित है कि शिवरात्रि व्रत के दिन लोग भांग पीते हैं॰ अब हम यहां यह बिचार करते हैं कि यह योग्य है कि अयोग्य॰ जो लोग जो कर्म करते हैं वे उसको योग्य ही जानकर करते हैं परन्तु सब विषयों में भ्रम हो सकता है॰ वैसेही व्रत में भांग पीना यह भी एक भ्रम है॰ व्रत में भोग उपभोग मादक द्रव्यादि वर्जित हैं यह आगे के वाक्यों से स्पष्ट होगा॰ गंध तांबूल पुष्पादि स्त्री सम्भोगं महायशा:। वर्ज्जयेत्। लघुनारदीये। आदि शब्देन ग्राह्यगीतं मादकादीनितितट्टीकाकार:। शाकं मधुपरान्नं च त्यजेदुपवसन्स्त्रियम्। कौर्म्मे। मादकादींश्चवर्ज्जयेत्। स्मृति समुच्चये। गात्राभ्यंगं शिरोऽभ्यंगं तांबूलञ्चानुलेपनं। व्रतस्थो वर्ज्जयेत् सर्व्वम्। विष्णुरहस्ये। इत्यादि। एकादशी व्रत के निर्णय के प्रसंग में पूर्वोक्त वस्तुओं का वर्ज्जन करके 'एते चाविरोधिनो निर्णया: सर्व्वे व्रतेषुज्ञेया: (निर्णयसिंधु) लिखते हैं अर्थात् व्रत मात्र में इन वस्तुओं का त्याग है॰ 'शिवरात्रि व्रतञ्चरेत्, इत्यादि वाक्य समूहों से शिवरात्रि व्रत भी व्रतों के अन्त:पाती है तो पूर्वोक्त वस्तुओं का इस में भी निषेध आ गया और शिवसर्व्वस्व धृत स्कन्दपुराण के 'चतुर्द्दश्यांनिराहारो भूत्वाऽहं परमेऽहनि। भोक्ष्येऽहंभुक्तिमुक्त्यर्थंशरण भवशंकर' इस वाक्य से जब निराहार की प्रति-

ष्ठा किया तो उस में जब आहारमात्र का निषेध हुआ तो भांग पीना कहां आया ॥

जो कहो कि महादेव जी पीते हैं इस से हम पीते हैं तो यह तो एक निरे बालकपन की बात है॰ इसके उत्तर देने की उपेक्षा कर के हम श्रीमद्भागवत के दो श्लोक मात्र लिख देते हैं॰ ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरितं क्वचित् । तेषां यत् स्ववचो युक्तं बुद्धिमांस्तत्समाचरेत् ॥ १ ॥ नैतत्समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वरः । विनश्यत्याचरन्मौढ्या यथारुद्रोऽब्धिजं विषम् ॥ २ ॥

जो कहो कि हम महादेव जी को समर्पण करके प्रसाद लेते हैं सो भी नहीं॰ दाल भात समर्पण करके प्रसाद क्यों नहीं लेते॰ महादेव जी का प्रसाद शिवनिर्माल्य है वह दीक्षित शैव और दैवज्ञ के अतिरिक्त सब को शिरसाधार्य्यमात्र है पेय नहीं । इसके सिवा महादेव जी के पूजा में शास्त्रोक्त कहीं भांग चढ़ाने की विधि नहीं और वामाचारियों के अतिरिक्त न कोई आर्य्य और दक्षिण शास्त्रकार ने महादेव जी को मादक वस्तु सेवी लिखा है॰ जो कहो क्वचित् तन्त्रादिकों में प्रमाण मिलता है तो तन्त्रादिकों में तो महादेव जी को शिवरात्रि के ही दिन मद्य और मांस चढ़ाना लिखा है यथा ! अशेष फल दानेन यत् फलं परिकीर्तितम् । तत् फलं प्राप्नुयान्नित्य मद्य मांस निवेदनात् ॥ और फिर मादक वस्तु सेवन करके जब देवता के मन्दिर में जाने का निषेध किया है तो मादक वस्तु पीकर व्रत वा पूजा कैसी॰ इसके भूरि भूरि प्रमाणपुञ्ज हैं पढ़ने के भय से थोड़े में सब बातें

लिखी गई० सर्व्व भाव से मादक वस्तु का सेवन बुरा है इसमें विशेष प्रमाण की आवश्यकता नहीं० शास्त्र पुकारते हैं 'मद्यमपेयमदेयमग्राह्यं' ॥

अब मद्य से और भांग से क्या संबंध है दिखाते हैं। मद्य शब्द का अर्थ है वह वस्तु जिस से नशा हो० हिन्दूशास्त्र के मुख्य प्रवर्तक और अग्रमान्य आर्य्य धर्म्म के प्रधान वक्ता भगवान मनु ने भी आठ प्रकार के मद्य लिखकर भांग इत्यादि को मद्य में गणना की है० राज निघंट भी इस की आर्ष वाक्य से पोषकता करके लिखता है "पेयंयन् मादकं लोके तन्मद्यमभिधीयते। (अ० क० ४ खं०) भांग के भैलोक्यविजिया विजया अजया जया गंजा भंगा हर्षिणी आनन्दा इन्द्राशना और वीरपत्नादि नाम संस्कृत में प्रसिद्ध हैं (रा० नि० वा० सं० को०) तन्त्रों में मदिरा के प्रसंग में बराबर भांग के नाम मिलते हैं० सुरा बनाने के प्रकरण में 'त्रैलोक्य विजयांचैव मातुलिंगंतथैवच' एक स्थान पर और "दधिचैलोक्य विजया तथैवच करी कणा। गुड़ेन सह संधानात् गौड़ी मद्यं प्रकीर्तितं" लिखा है (महा तन्त्र के मत्स्य सूक्त चतुर्व्विंशति साहस्र का ३६ वां पटल देखो) फिर उत्पत्ति तन्त्र के ६३ पटल में सुरा शोधन के प्रकरण में मांसादिकों के साथ ही लिखते हैं 'विजयां चानु कल्पां च द्विजो दद्याद्दिने दिने' ऐसे ऐसे अनेक स्थान पर वाक्य है० तो इनसे भांग का मद्य के अन्तर्गत होना वा मद्य से घनिष्ट संबंध यदि आग्रह छोड़कर देखा तो स्पष्ट है० इस से दक्षिण मार्गावलम्बी आर्य्य जनों को नित्य वा व्रत में भांग पीना अनुचित ही है यही सिद्ध

हुआ। केवल मद्यलोलुप जनों ने लोकापवाद से बचने के हेतु भांग गांजा अफ़ीम इत्यादि का प्रचार किया है जिससे सर्व्व प्रकार भारतवर्ष का अमङ्गल ही होता है॥

मनुष्य और दूसरे जीव।

प्राय: लोग कहते हैं कि ईश्वर ने अपनी सारी सृष्टि में मनुष्य को सब से उत्तम बनाया और उसे उन गुणों से अलंकृत किया जिन के कारण मनुष्य और जंतु का भेद उत्पन्न हुआ। इस से यह न समझना चाहिये कि सब अच्छे२ गुण मनुष्य ही को दिये गये हैं और इन में से एक भी जन्तुओं में नहीं पाया जाता। क्या हम लोग सिंह के समान बलवान होने की इच्छा नहीं रखते, या पक्षी की तरह आकाश में उड़ने की अभिलाषा नहीं करते? मूर्ख और अज्ञान मनुष्यों को पशु कह देना एक साधारण बात है, मानो पशु कुछ चीज़ ही नहीं है, या उसके बनाने में ईश्वर को कुछ श्रम ही नहीं हुआ है। यदि ध्यान देकर देखिये कि पशु क्या हैं और ईश्वर ने उन्हें कितने श्रम से बनाया और उनको कौन२ से गुण दिये तो जान पड़ेगा कि मनुष्य और पशु में उतना भेद नहीं है जितना हम लोग समझते हैं। क्या कीड़ों की छोटी२ कोमल नसें या मच्छड़ के अल्प शरीर में मनुष्य के अनेक अंग नाक, आंख, आदि को देख कर हमें ईश्वर की चतुराई श्रम और विचित्र रचना पर आश्चर्य नहीं होता, अथवा मकड़ी के जाले या मधुमक्खी के छत्ते में वह कारीगरी देख कर जिस की बराबरी मनुष्य अपने सब यंत्रों के

बल से भी नहीं कर सकता, क्या हम लोगों को निश्चय न-हीं होता कि ईश्वर ने इन्हें भी बुद्धि दी है? हम यहां पर जीवों के शरीर की बनावट का वर्णन न करेंगे पर उन शक्तियों को लिखेंगे जो इन में पाई जाती हैं॥

१—जीवों में देखने, * सुनने, चखने, सूंघने, और अनुभव करने या समझने की शक्ति रहती है।

२—जीवों को दुख और सुख का ज्ञान होता है। यदि किसी जीव को कष्ट दीजिये तो वह चिल्ला कर अपना दुख प्रगट (जाहर) करता है, और ऐसे ही यदि उसे प्यार कीजिये तो हर्ष दिखलाता है।

३—जीवों में स्मरण शक्ति होती है। प्राय: सुनने में आया है कि बरसों के छूटे हुए कुत्तों ने अपने स्वामी को पहचान लिया है॥

४—जानवर चीज़ों पहचानते और एक का दूसरे से भेद करना भी जानते हैं। यदि किसी तोते को मटर की खोखली छीमी दी जाय तो वह उसे बिना छीले फेंक देगा। इस छीमी में दानों का न होना वह उसी भांति समझ लेता है जैसे हम लोग अर्थात् जितनी छीमियों में दाना होता है वे सब भारी होती हैं, और यह भारी नहीं है, इसलिये इस में दाना नहीं है॥

---

* यदि पक्षियों के आंख की नसों की जड़ हटा दी जाय तो वे कुछ न देख सकेंगे क्योंकि पुतलियों का चलना बन्द होजायगा, पर यदि खोपड़ी में की नसों को हटा दें तो आंख साफ़ और भली चंगी बनी रहेगी और पुतली भी चलती रहेगी तौभी पक्षी देख न सकेगा क्योंकि उसकी बिम्ब ग्राहक नसें जाती रहेंगी॥

५—जानवर अपनी इच्छा के अनुसार काम करते हैं देखिये बिगड़े हुए हाथी वा घोड़े पर सवारी करना कितना कठिन है ॥

६—जानवरों में लज्जा होती। यह बात प्रसिद्ध है कि हाथी या सांप को कोई मैथुन करते देख ले तो वह उस आदमी को अवश्य मार डालता है।

७—जानवर प्रीति और घृणा के चिन्ह दिखाते कमिशन प्रायः देखने में आया है कि कुत्ते अपने स्वामी के मरने पर खाना पीना छोड़ कर दो एक दिन में मर गए हैं। कौआ, बन्दर आदि के साथ कोई बुराई कीजिये तो वे उसका बदला लेने की घात में लगे रहते हैं।

स्वाभाविक ज्ञान आदमी और जानवर दोनों में होता है। इसी के द्वारा लड़का भूख लगने पर अपनी मा का स्तन ढूंढ़ता है, और मकड़ी अपना जाला बनाता है। दूध पीने के समय लड़का अपने मुंह की नसों को बिना कुछ उनका हाल जाने काम में लाता है और इसी तरह मकड़ा बिना यंत्र के विद्या पढ़े अपने जाले को विचित्र रीत से बिनती है। यह सब है पर तर्कना शक्ति और भाषासी फलदायक और अद्वितीय वस्तु ईश्वरने इसी लोगों को दी है। जानवर अपने एक सिध्यांत के द्वारा दूसरा सिध्यांत नहीं निकाल सकते। किसी का चोखना होना तो तोता पहचान लेता है पर अपने पहचानने की रीत को सोचकर न्याय शास्त्र में पण्डित नहीं हो जाता। मकड़ी जाला बनाना जानती है पर यंत्र शास्त्र के सिध्यांतों को नहीं समझ सकती।

भाषादर्श-बालव्याकरण ।

यह व्याकरण एक विलक्षण और नये चाल का है तथा हिन्दी संस्कृत और अंगरेज़ी तीनों का मुख्य सहायक है जो लोग हिन्दी भाषा और संस्कृत तथा अंगरेज़ी हस्तगत किया चाहते हैं एक बार ध्यान पूर्वक आद्योपांत देख जांय और [illegible]ल में पढ़ कर इमतिहान वर्ने क्यूलर और माइनर [illegible]दि का दिया चाहते हैं इस को कामधेनु वा साक्षात् गुरुवर्य्य वृहस्पति वा सुरतरु जानकर शरण आवें और अपना मनोरथ पावें जो लोग सब व्याकरणों को हस्तगत कर चुके हैं वे भी इस को ज्ञानांजन शलाका समझ कर अंजन करें जो लोग अखबार व पंचपीरों में भरती होकर बड़े २ गपाष्टक किया करते हैं वे लोग अवश्य देखें अधिक क्या लिखें जिन लोगों को आंख हो अवश्य इस [आदर्श] दर्पण से अपनो विद्या को सुधार लें और सदा बालकों को इस दर्पण को अर्पण कर अपना कर्तव्य सफल करें पाठकों को उचित है कि अपना प्रतिनिधि जानकर इस को अपने शिष्यों को प्रतिक्षण साथ दें बस अधिक क्या इस से सस्ता भी कोई पुस्तक न मिलेगा घर से भी कुछ लगाकर अल्प मूल्य रक्खा है ऐसा न कि उपकार के लिये ग्रन्थ का नाम हो और यथार्थ में व्यौपार बस बस एक बार तो देखिये । दाम ।=)॥

वर्ण बिनोद ।

नव खण्डों में से चौथा खण्ड ।

जिस को ।

"नामार्णव कोष" "चण्डी विलास" "नीतिसार" "ज़मीन्दारी लेखा" "महाजनी लेखा" "खेतनाप" "भाषातत्वदीपिका" "छोटावस्तुविचार" "सभादीपिका" "पत्रबोध" "कैथीवर्णमाला" आदि के लेखक बाबू शिवरामसिंहात्मज चण्डीप्रसाद सिंह बीर;ङ्गय ने संग्रह किया ।

सज्जनशिरोमणि बाबू द्वारिका प्रसाद लाल डिप्यूटी इनस्पेक्टर मुंगेर की आज्ञानुसार छापागया

"खड्गविलास" छापाखाना, बांकीपुर में
बाबू साहब प्रसाद सिंह ने छापकर प्रकाश किया ।

1893.

दाम ≠)   डाकमहसूल)॥

सूचना

सब किसी को यह बात विदित कराई जाती है कि जो पुस्तकें "चन्द्रविलास" प्रेस में प्रेस के तरफ से छपी हैं उस को कोई किसी तरह पर नहीं छाप सक्ता अगर कोई छापेंगे तो सरकारी कानून मुताबिक सज़ा पावेंगे और एक के बदले दो देंगे भी। बाज़ आदमी इतना चिताने पर भी अपनी सभ्यता से नहीं चूकते और ज्यों ज्यों तरह देते जाइये त्यों त्यों वे बढ़ते चले जाते हैं अतएव अब कोई आदमी निम्न लिखित पुस्तकों को (जो छपचुकी है) किसी तरह पर बिना मुझ से पूछे छापेंगे तो इस का पूरा बदला लिया जायेगा। और यह भी याद रहे कि सब पुस्तकें रजिष्टरी कराई गई हैं॥

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र रचित।

हिन्दीव्याकरण, बंगछन्द, ~)

[विचित्र काव्य।

भाषाव्याकरण (बाबू गिरिधर दास कृत परन्तु इस को बा० हरिश्चन्द्रने पूरा किया है)

स्तोत्रपञ्चरत्न, बकरीविलाप ॥)

बुन्दी का राज वंश। ~)

नीतिविषयक इतिहास।

बिदुर नीति

रामायण का समय। ॥

हिन्दी भाषा। [बिन्दानन।

जयदेव चरित्र और गीतगो-

अन्धेरनगरी। (नाटक) ॥,

सङ्गीत सार। ~)

प्रेमप्रलाप। ~)

भक्तिसूत्र का बड़ा भाष्य १,

पुरानों की उपक्रमणिका ॥,

राम लीला। ~)

सती चरित्र। ~)

लेक्चरों का संग्रह।

वर्णा विनोद ॥

परिश्रम ।

यह प्रसिद्ध और देखी हुई बात है कि ईश्वर की ओर से भी उन्हीं को सहायता मिलती है जो दूसरे का भरोसा छोड़ कर अपने ही बल, पौरुष और परिश्रम को मुख्य समझते हैं। जो लोग आप परिश्रमी होते हैं उनकी अनेक प्रकार की वृद्धि होती रहती है हानि तो स्वप्न में भी नहीं देख पड़ती। यदि ऐसे मनुष्य किसी देश में बहुत से हों तो उस देश में उन मनुष्यों पर क्या बरन उनके जात भर की वृद्धि होती है। कितने राज्यों में ऐसा देख पड़ता है कि प्रजा की रक्षा के लिये बहुत सी बातें राजाओं की ओर से की जाती है। जहां ऐसा होता है वहां की दशा अन्त में बहुत बिगड़ जाती है। प्रजा आलसी बन बैठती है और समझती है कि जब राजाओं की ओर से हमें सब प्रकार की सहायता मिलती है तो हमारे परिश्रम का क्या प्रयोजन है। केवल नीति और राज प्रबन्ध से किसी मनुष्य या जात की वृद्धि कभी नहीं हो सकती। हां राज नीति से मनुष्यों के धन, प्राण और शरीर की रक्षा अवश्य हो सकती है। इस से सिद्ध होता है कि मनुष्य की वृद्धि तभी हो सकेगी जब वह आप परिश्रम करे और हर बात के विचार और अनुमान में लगा रहे। जिस राज्य में प्रजा आलसी होती है वहां की उत्तमता में बड़ा भेद पड़ जाता है और किसी न किसी दिन उसके बिगड़ जाने का खटका रहता है। परन्तु जिस देश में प्रजा राजा के भरोसे पर न रहकर अपने ही परिश्रम को

मुख्य समझती है वहां अनेक प्रकार की वृद्धि देखने में आती है। यदि कहें कि प्रति बर्ष नीति के बदलने से प्रजा और देश की वृद्धि होगी और लोग परिश्रम करेंगे तो यह भी असम्भव जान पड़ता है। सच पूछिये तो देश और प्रजा की वृद्धि तो तभी होगी जब कोई ऐसा उपाय किया जाय जिस में प्रजा आप परिश्रम पर उतारू होकर अपने बल और बुद्धि से नाम, धन, और विद्या का उपार्जन करे और अनेक प्रकार के यंत्र और अस्त्र आदि बनावे। किसी देश का राजा जैसाही स्वेच्छाचारी हो पर यदि वहां की प्रजा आप परिश्रम करती रहे तो उस देश की दशा उत्तम होगी, परन्तु नीति और राजा चाहे जैसे उत्तम हों पर प्रजा पशुओं की तरह मूर्ख और आलसी हो तो वहां किसी प्रकार की वृद्धि न होगी। बहुत से लोग समझते हैं कि हमारा कोई मुखिया राह दिखानेवाला नहीं है हम अकेले क्या करें। भला सोचिये तो कि ऐसे मूर्ख और आलसी मनुष्य मुखिया लेकर क्या करेंगे। यदि वे मुखिया की परवाह न करके आप भी थोड़ा बहुत भी परिश्रम करते तो कुछ न कुछ फल अवश्य देख पड़ता। कोई २ कहते हैं कि जात और नीति व वृद्धि से प्रत्येक मनुष्य की भलाई होती है पर ऐसा कहना भी उन की मूर्खता है। वे नहीं जानते कि जात कौनसी वस्तु है। जात केवल बहुत से मनुष्यों के समूह का नाम है इस लिये इन्हीं भिन्न २ मनुष्यों के परिश्रम और बल से जात का बल बढ़ सकता और उन्नति हो सकती है। जब इस विषय में किसी प्रकार का सन्देह न रहा कि जहां जितने अधिक

मनुष्य जितना अधिक परिश्रम करेंगे वहां उतनी ही वृद्धि भी होगी। देखिये इङ्गलिस्तान के मनुष्य प्राय: बड़े परिश्रमी होते हैं और यही उन की वृद्धि का मुख्य कारण है। यद्यपि इस में सुखिया भी हैं पर उस देश की वृद्धि विशेष कर प्रत्येक मनुष्य के आप परिश्रमी होने से हुई है और होती जाती है। युद्ध में विजय केवल सेनापतियों की योग्यता से नहीं होता बरन हरएक सिपाही की वीरता और परिश्रम से। सदा देखते चले आते हैं कि बड़े बड़े विद्यावान शिल्पकार और कवि इत्यादि केवल अपनी, (निज) परिश्रम से प्रसिद्ध हुए हैं, न वे देवता थे और न जात या धन में दूसरों से बढ़कर, किन्तु औरों की तरह साधारण मनुष्य थे जो केवल अपने परिश्रम और गुण के कारण ऐसे प्रसिद्ध और यशस्वी हुए कि आज तक लोग उनकी प्रतिष्ठा करते हैं, जैसे कालिदास और शेक्सपियर। देखिये इन को पहले कौन जानता था कोई कोई कहते हैं कि कालिदास पहले बड़े मूर्ख थे विवाह होने के पीछे जब उनकी स्त्री ने उन्हें मूर्ख देख उन का अपमान किया तो उन्हों ने लज्जा से घर छोड़ कहीं जाकर इतनी विद्या पढ़ी और परिश्रम किया जिस से वे ऐसे प्रसिद्ध हुए कि आज तक उन का नाम चला जाता है। इसी प्रकार शेक्सपियर साहिब भी जिन्हें इंगलिस्तान के सब लोग जानते हैं किसी चरवाहे के पुत्र थे।

भलाई।

संसार में डेढ़ अकिल की कहावत प्रसिद्ध है परन्तु प्रति मनुष्य आधी अवश्य लोगों के लिये छोड़ देता है। अवरज

येह है कि भलाई जितनी हों, सब की सब अपने ही पेट में भर लेते हैं, क्योंकि सभा में कोई यह नहीं कह सकता कि मैं भलाई छोड़ बुराई चाहता हूं जैसे मानस रामायण लङ्काकाण्ड में तुलसी दास जी ने लिखा है) [चौ॰ पर उपदेश कुशल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे॥] संक्षेप, मनुष्य यदि भलाई को अपने जीसे किया चाहे तो कुछ कठिन नहीं, वरन बिना कौड़ी का गट्टा है या प्रसाद का बताशा जो आपही आप मुंह में पड़ते ही घुल जाता है।

देखो! भलाई का यह एक प्रकार कैसा है। जब तुम्हें संयोग बस कोई अज्ञानी मिल जाय तुम उसे ज्ञान देकर भलाई ले सकते हो। इसी रीति अर्थी को अर्थ अभय को अभय और अप्रसन्न को प्रसन्नता भी दे सकते हो। यदि तुम सावधान हो कर सोचो तो देखोगे कि बहुत से अवसर तुम को ऐसे मिलते हैं जिन में तुम वादियों की कलह को निपटा सकते हो और योग्य पुरुष के भले आचरणों पर ध्यान देकर पक्षपात बचा सकते हो और बुरों को बुराई से रहित क्रोधियों को शान्त और टेढ़े को सीधा करना कौन सी भलाई से कम है। भला! यदि भले मनुष्य इसे न करेंगे तो कौन करेगा क्योंकि इस से पूरी तृप्ति इन्हीं को होती है और ये अपने विवेक और विचार से इस का अंगीकार किये रहते हैं॥

भलाई का दूसरा प्रकार पहिले से भी सुगम है क्योंकि जब तुम्हें कोई काम नहीं रहता और न कोई संगी साथी बात चीत कर तुम्हारे चित्त को एकाग्र होने से रोकता टोकता है।

स समय तुम को ऐसा एकान्त अवसर मिल जाता है कि संत मित भलाई का बहुत सा फल उठा सकते हो । देखो! उस ईश्वर के स्मरण करने को यह कैसा उत्तम समय है, जिसने तुम्हें बनाया और चैतन्य शक्ति दी है और जो तुम्हारा अति प्रिय उत्तम मित्र है । जैसे पाठशाला में अपने पाठक की हाजिरी देने का तुम्हारा स्वभाव पड़ रहा है, वैसे हो ईश्वर की प्रति दिन हाजिरी देने की प्रकृति रक्खो, क्योंकि तुम्हारा मास्टर तो केवल पाठशाला (स्कूल) ही में तुम्हारी हाजिरी ले सकता है परन्तु ईश्वर सब जगह वर्त्तमान रहता है जहां से चाहो उस की हाजिरी बजा सकते हो और जब ऐसा करोगे तो एक परम प्रिय मित्र के समागम का सुख भोगोगे । काल का बीतना तुम्हें कुछ भी न गड़ावेगा, वरन आनन्द से कटेगा, क्योंकि जब तुम एकान्त में होगे तब भी ईश्वर तुम्हारे साथ रहेगा, इस से अकेले कभी नहीं रह सकते कि समय काटना कठिन पड़ जाय । तुम्हारा ध्यान सदा सब घंटों में खाली नहीं रह सकता जैसा दूसरों का बिना काम बीतता है । जब तुम ऐसा करोगे तब संसार से मुक्त होगे भक्ति चमकेगी और ईश्वर की व्यापकता का ज्ञान बढ़ेगा जो चारो ओर से छाई है । इस के सिवाय अपनी बिपत्ति भय आदिका निवेदन उस जगत कर्त्ता के आगे कर सकोगे जिस ने तुम को उत्पन्न किया है और जो तुम्हारे बड़े मित्र के समान सब सुनता है और तुम्हारी सहायता किया करता है ॥

शब्दपरिचय ।

दिन भर में हम लोग सैकड़ों शब्द सुना और बोला कर

ते हैं परन्तु उनकी उत्पत्ति पर बहुत कम सोचते हैं। जिसने कभी एक शब्द की भी उत्पत्ति सोच कर निकाली है उसी ने अपने परिश्रम का फल पाया है, वही जानता है कि भाषा क्या है, इस में कौन सा ख़ज़ाना (कोश या भण्डार) भरा है, और उसे किस तरह काम में लाना चाहिये। बहुत से लोग इसे कठिन काम समझते हैं, पर हम उन्हें ख़ूब यक़ीन कराकर कहते हैं कि जिस मिहनत से गणित का जानने वाला अपने 'य' का मान निकालता है, या रसायनी आंगरिकाम्ल को व्यस्त करके उसका चिन्ह बनाता है, या भूगर्भ विद्या का जानने वाला अपने पत्थर पर के प्रकृति के हाथ से लिखे हुए विचित्र अक्षरों को पढ़ता है उस से कहीं कम परिश्रम शब्दों के साथ परिचय करने में लगता है। जो हो, पर हमें पूरी आशा है कि शब्द उत्पत्ति निकलने वाले को जो आनन्द होता है उस का कुछ अंश पढ़ने वालों को भी अवश्य मिलेगा ॥

राजा, है, डोंगी, सलाम इन चार तरह के चार शब्द अक्षरों को हम एक एक कर के लेते हैं और इनकी उत्पत्ति सोचते हैं तो यकायक हमें याद पड़ता हैं कि संस्कृत में एक शब्द 'राजा' है जिसका धातु लेटिन रेज (Reg) से मिलता है, पर 'है' की उत्पत्ति सूझ नहीं पड़ती, तो भी 'राजा' की उत्पत्ति निकालने से हमें जो आनन्द हुआ था उससे अधिक को लालच से हम पीछा नहीं छोड़ते और उसकी खोज में लगे रहते हैं तो जान पड़ता है कि हम लोगों से कहीं अच्छे गंवार लोग इस विषय में हैं, क्योंकि शब्दों की उत्पत्ति का

पता प्रायः उन्हीं की बोली से लगता है। वे लोग 'है' के बदले 'अहै' 'अहउ' 'अहई' 'हई' 'हउ' 'हव' 'हो' 'अहई' आदि बोलते हैं, और तुलसी दास की मानस रामायण, राम गीतावली, कवितावली, बिनय पत्रिका, दोहावली, जानकीमंगल, उमामंगल, सतसई, क्षपै रामायण, कृष्णावली, और सूरसागर, बिहारी कवि की सतसई और भी नवीन प्राचीन कवियों की काव्य में भी 'अहै' 'अहई' आदि शब्द मिलता है। इस से हम ऐसा समझते हैं कि जैसे 'स्फुरनं' 'स्फालन' 'अतसी' आदि शब्दों के आदि अक्षर निकल जाने से 'फिरना' 'फालना' 'तीसी' आदि बने हैं वैसेही 'है' 'अहै' से बना है। मरहटी में 'आहे' का शब्द देखकर हमारा मत और दृढ़ होजाता है और ऐसा समझ में आता है कि यह शब्द 'आसे' से निकला है, पर 'आसे' कोई शब्द आजतक सुनने में नहीं आया, तो भी ढूंढ़ते हैं कि यह 'स' किसी अक्षर से बदलकर किसी शब्द में छिपाती नहीं है और जब देखते हैं कि हिन्दी 'मोछ' जिसे गुजराती पंजाबी और सिन्धी में 'मुछ' कहते हैं, प्राकृत 'मसु' या 'मस्सु' संस्कृत 'श्मश्रू' से निकला है तो हमारा परिश्रम सफल होजाता है, क्योंकि निश्चय होता है कि इसी तरह 'आसे' का 'स' 'छ' से बदल कर बंगला 'आछे' बना है जिस के 'आ' का 'आहे' और 'है' की तरह लोप होकर गुजराती 'छे' बना है। इस 'आछे' की उत्पत्ति बीम्स साहिब और ही शब्द से बतलाते हैं पर जब हम अपने छोटे लड़कों के मुंह से अच्छा को अछा कहते सुनते हैं तो साफ़

मालूम होता है 'छ' का 'त्थ' में बदल जाना स्वाभाविक है। हमारा यह मत 'चाचा' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत 'तात' (बेलुग् 'ताद' अंगरेज़ी 'दाद' हिन्दी 'दादा') से देखकर और भी पक्का होता है, और फिर संस्कृत 'वत्स' से प्राकृत 'वच्छो' देखकर तो पूरा निश्चय हो जाता है कि यह 'आछे' प्राकृत 'अत्थि' संस्कृत 'अस्ति' से बना है जो फ़ारसी 'अस्त' लैटिन 'एस्ट' और अंगरेज़ी 'इज़' से मिलता है॥

इस प्रकार 'है' का पता तो लगा पर 'होंगी' का कहीं चिन्ह भी नहीं देख पड़ता। वररुचि ऐसे शब्दों को देशज* कहते हैं। जानना चाहिये कि ये शब्द संस्कृत से नहीं निकले हैं वरन हिन्दुस्तान के पुराने निवासियों की (जिन्हें आर्यों ने जीता) भाषा से बने हैं॥

---

* पण्डित शिवनारायण त्रिवेदी 'भाषा तत्व दीपिका' नामक हिन्दीव्याकरण में लिखते हैं 'सार्थक शब्द तत्सम तद्भव और देशज के भेद से तीन प्रकार के हैं। तत्सम उसे कहते हैं जो अपनी मूल भाषा से आकर ज्यों का त्यों बना रहे जैसे नदी काल समय वृक्ष आदि। तद्भव उसे कहते हैं जो अपनी मूल भाषा से आकर कुछ बिगड़ कर रूपांतर हो बन गया हो। जैसे हस्ती से हाथी घोटक से घोड़ा नासिका से नाक और कर्ण से कान आदि। देशज उसे कहते हैं जो और विदेशीय भाषाओं के पद हिन्दी में आगये हैं जैसे गवाह, शक, लायक, मेहरबानी, साफ़, खुद, जेहलखाना, डिगरी, सम्मन, नोट, लैन आदि।

'सलाम' का पता तुरन्त लग जाता है। यह फारसी शब्द है॥

इस प्रकार चारों शब्दों की उत्पत्ति को ढूंढ़कर निकालने से मालूम होता है कि एक तो हिन्दी में उसी रूप से प्रसिद्ध है जैसा कि वह संस्कृत में था, उस की एक मात्रा भी नहीं बदलती है, दूसरा भी संस्कृत से निकला है पर उसकी दशा ऐसी बदल गई है कि वह पहचान नहीं पड़ता, तीसरा संस्कृत से नहीं निकला है पर हिन्दुस्तान के पुराने निवासियों की भाषा से बना है, चौथा हिन्दुस्तान के बाहर का शब्द है। जो बात इन चार शब्दों के वास्ते ठीक है वही सब हिन्दी शब्दों के लिये ठीक समझनी चाहिये॥

जितने शब्द लीजियेगा सब की उत्पत्ति इन चार में से किसी एक की तरह ठहरेगी, जैसे कवि, अनुमान, जल, कुल, दर्शन, स्थापना आदि की उत्पत्ति 'राजा' की तरह है पर दर्शन और देखना दोनों 'दृश' धातु से बने हैं, इसी तरह स्थापना, प्रतिष्ठा, ठहरना 'स्था' धातु से हैं, फिर इसका क्या कारण है कि ऐसे शब्द जिनका एक ही अर्थ है और जो एक ही धातु से निकले भी हैं दो रूप में पाए जाते हैं? इस का जवाब दोनों शब्दों का बरताव देखने से मालूम होगा। हम लोग देवता का दर्शन करते हैं पर अपने मित्र को देखने जाते हैं, शिव की स्थापना या प्रतिष्ठा करते हैं पर मेहमान को अपने घर ठहराते हैं, महिम्न का पाठ करते हैं पर इतिहास को पढ़ते हैं। इस तरह के बहुतसे उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनसे मालूम होता है कि जितने धर्मसम्बन्धि शब्द हैं वे सब

शुद्ध संस्कृत हैं और उसी अर्थ के दूसरे शब्द जो हरवक्त बोले जाते हैं बदल गए हैं। इस से जान पड़ता है कि हिन्दी में वही संस्कृत शब्द अपने शुद्ध रूपमें आजतक बने हैं—१—जो छोटे २ हैं और जिनके उच्चारण में कुछ कठिनता नहीं पड़ती, जैसे सखि, धन, पर्वत, २—जो धर्म सम्बन्धि हैं। ऐसे शब्द सदा पढ़े लिखे ब्राह्मणों के मुंह से सुनने में आते हैं पर इन्हीं के धातु से निकले हुए उसी अर्थ के दूसरे शब्द साधारण लोगों में रोज़ बोले जाते हैं, जैसे झारी के गंगा जल से आचमन लेते हैं पर लोटा भर पानी अचे जाते हैं॥

अब एक 'पगड़ी' शब्द लीजिये। डोंगी शब्द की तरह इस का भी पता कहीं नहीं लगता इसलिये इसे भी हिन्दुस्तान के पुराने निवासियों की भाषा समझना चाहिये॥

फिर 'ज़िना' शब्द को देखिये। यह अरबी है। बहुतेरे लोग समझते हैं कि हमारी भाषा में बाहरी शब्द बहुत कम हैं पर वे सोचते नहीं कि हम लोग सदा मारकीन, सिटिन, साटन,* बोताम आदि शब्द चौकमें और डिगरी, डिसमिस वग़ैरह कचहरी में सुना करते हैं जो सब अंगरेज़ी शब्द हैं। पादरी पुर्तगालका शब्द है। दीनारशब्द यद्यपि अमरकोष

---

* आगे यह रेशमी कपड़ा यहां चीन देश से आता मालूम होता है क्योंकि संस्कृत में इसका नाम चीनांशुक लिखा है और साटन शब्द भी फ़रासीसी ज़ाटोनी (Zatony) से निकला है ज़ायटोन (Zayton) चीन के किसी बन्दर का नाम है॥

में भी लिखा है पर है अरबी। यह कैसा? दीनार* का शब्द हम लोगोंको बहुत कुछ सिखलाता है। मान लो कि यहां मुसलमानोंकि राज का होना हम लोग भूल गए हैं और किसी इतिहास में भी नहीं लिखा है। अब इस दशा में मुन्सिफ़ सदरआला, मुक़द्दमा, क़ाज़ी आदि शब्दों को हरएक किसान के मुंह से सुनकर क्या समझेंगे? निस्संदेह ऐसा समझेंगे कि हमारा देश किसी समय में ऐसे राजाओं के हाथ में था जिन की भाषा में ये शब्द थे, और जैसे कि अब हम लोग मजिस्टर साहिबके मुंह से डिगरी डिसमिस सुनते २ समझने लगे और इस अर्थ के पुराने शब्दों को भूल गए वैसेही मुक़द्दमा आदि शब्द भी हमारी भाषा में किसी समय आ मिले हैं। ऐसेही अंगरेज़ी में मैजिस्ट्रेट आदि शब्द देख कर अनुमान होता है कि उस देशमें लैटिन बोलनेवालोंका राज रहा है। इसी तरह दीनार का शब्द देखकर हम लोगों को समझना चाहिये कि अरबवालोंसे हमसे किसी प्रकार मुद्रा का हेरफेर रहा है क्योंकि दीनार अरबीमें एक मुद्राका नाम है। इसतरह कई चिन्ह और लेख देख कर इतिहास वालों ने यह सिद्धांत किया है कि पुराने समय में अरब के सौदागर यहां आया करते थे। देखिये ये शब्द हमलोगों को वैसेही सिखलाते हैं जैसे भूगर्भ विद्यावालों को पत्थरों में के कीड़े या वृक्ष पत्तियां। यह वह शब्द हैं जिनके कारण अङ्गरेज़ लोग बंगला

---

* अमर कोष तृतीय कांड नानार्थ वर्ग में लिखा है। "दीनारेऽपि च निष्कोऽस्त्री कल्कोऽस्त्री शमलैनसोः। दंभेऽप्यथ पिनाकोऽस्त्री शूलशङ्करधन्वनोः ॥ १४ ॥"

मरहटी आदि में हमारी भाषा अच्छी समझते हैं, पर हमा रे आजकल के बहुत से नये २ संस्कृत पढ़े हुए लोग इन को अपने घर से निकाला चाहते हैं और मरे हुए संस्कृत शब्दों को फिर से जिलाया चाहते हैं जिसका करना उतनाही क ठिन है जितना मरे हुए आदमी का जिलाना, और जो क दाचित् ऐसा हो भी सके तो हमारी भाषा की दशा बंगा लियों की साधु भाषा की सी हो जायगी कि बिचारे सीधे सादे गांववालों की समझ में न आ सकेगी, और जब यह भा षा शब्दप्रिय विद्यारूपी कसौटी में कसी जायगी तो सब क लई खुल जायगी। बीम्स साहिब और दूसरे विद्यावानों का यह मत है कि ऐसा कभी नहीं हो सकता कि किसी भाषा के शब्दों के पांच हिस्से में से दो हिस्से भी उसी रूप में हों जिसमें वे हज़ार या बारह सौ बरस पहिले थे। जो हो हमें पूरी आशा है कि हमारी भाषा के सच्चे पक्षपाती लोग इन बाहरी शब्दों को दूसरे देश के अनमोल रत्नों की तरह जतन से रक्खेंगे क्योंकि ये वह चीज़ हैं जिससे हमारी भाषा धनी कहलाती है। बहुत से लोग इस बात से लज्जा करते हैं औ र प्रायः बाहरी शब्दों का संस्कृत से पता लगाना चाहते हैं हमने एक पण्डित को किसी सभा में यह कहते हुए सुना कि "कालिज (college) शब्द को अंगरेज़ी न समझना चाहिये किन्तु संस्कृत, और इसका समास इस तरह करना चाहिये काले इज्यते यत्र इति कालिज्यः। यह समास सुनकर हमें एक भांड़ की नक़ल याद पड़ी जिसने जलेबी का समा स जलस्य एबी किया था॥

दूसरे प्रकार के शब्दों की उत्पत्तियां जो सब से अच्छी हैं हमने पीछे के वास्ते रख छोड़ी थीं। ऐसे शब्द अक्षरों के आपस में बदल जाने से बनते हैं जैसे 'समझ' जो सम+धी से है, और 'बूझ' जो बुध धातु से है। यहांपर 'ध' 'झ' से बदल गया जैसे अधीक्षणं से झांकना, हम लोगों के यहां एक शब्द धीया (धी) जो प्राकृत 'दुहिदिया' संस्कृत 'दुहिता' से बना है, इस धी का (ध) बदल जाने से बंगला में झी हो जाता है। इस से यह न समझना चाहिये कि (ध) सदा (झ) हो जाता है। 'ध' कभी 'ह' होता है जैसे बधिर से बहिरा, परिधान से पहिरना, और कभी वह ट, थ' ढ, आदि से बदल जाता है जैसे द्विवर (जो द्वि+वर से बना है) ग्रीक में थेरियो (tharreo) हो जाता है, यह थेरियो संस्कृत धृष् से मिलता है और जैसे मृष् से मिटना, पृष् से पीटना वैसेही इस धृष् से ढीठ बनता है। कभी २ अक्षरों की जगह उलट जाती है जैसे पुतना संस्कृत पुनाति (पू) से बना है अर्थात् पूतना वह है जो पवित्र करता है।

तैरना और पैरना एकही अर्थ के दो शब्द हैं, पर दोनों दो धातु से निकले हैं, एक तो तृ तरणं, और दूसरा प्लु से है। इसी पैरने के धातु से अंगरेज़ी प्लाउ (जिसका अर्थ जोतना है) निकला है, और ऋ अर् धातु से (जिसका अर्थ जोतना और जिस से आय बना है) अंगरेज़ी ओर (oar = डांड़ा) निकला है। यह अर्थ का हेर फेर देखिये॥

इस तरह जो परिश्रम करके ढूंढ़ा जाय तो सब हिन्दी शब्दों का पता लग सकता है, और हम यही आशा रखते

हैं कि इस काम में कोई धोका न देगा। जैसा हमने पहले कहा था वैसेही फिर कहते हैं कि यह बहुत कठिन काम नहीं है। एक शब्द की उत्पत्ति ढूंढ़ कर देखिये कि उसी धातु से और कौन २ शब्द निकले हैं, जैसे जब हम ने बढ़ा को वृद्धि से निकाला तो यह भी जान पड़ेगा कि बूढ़ा भी इसी से बना है या रटना को रट से निकला देखकर राड़ और लड़ना पर भी ध्यान जायगा कि ये इसी धातु से हैं, क्योंकि लड़ाई में भी शोर होता है। इसी तरह फारसी गिरिया हिन्दी गिड़गिड़ाना, अंगरेज़ी क्राइ (cry) सब संस्कृत रट से निकले हैं, और घूर्ण से घूमना, घुमटा, घुमड़ा आदि बने हैं। शब्दों की उत्पत्ति में कभी २ विद्वान लोग एक दूसरे के मत से विरुद्ध भी होते हैं, जैसे अनारी की उत्पत्ति अनार्य से है पर कोई २ इसे अज्ञानी से निकालते हैं हमारी समझ में तो जैसे सज्ञान से सयाना वैसे अज्ञान से अयाना और अजान बना है, तौभी अज्ञानी से अनारी का बनना अशुद्ध नहीं कह सकते। इसी प्रकार पैसा की उत्पत्ति में हमारे एक मित्र हमसे विरुद्ध हैं। वह कहते हैं कि जैसे दम डेढ़ी से दमड़ी और द्विगुणा से टुकड़ा वैसेही पचीसा से पैसा बना क्योंकि पैसा २५ दाम का होता है। कितने लोग इसे अरबी फ़ुलूस से बतलाते हैं पर हमारा यह मत है कि पैसा उसी तरह बना है जैसे अंगरेज़ी पेनस (pence) और लेटिन पिक्यूनिया (pecunia) लेटिन शब्द पीकस (pecus) संस्कृत पशु से निकले हैं, क्योंकि पहले हिन्दुस्तान में पशुओं देकर लोग और चीज़ें मोल लिया करते थे।

लेख ।

यह पढ़ने लिखने और सभा में बोलने चालने में बुद्धि और बचन की चमत्कारी के समान एक गुन है जिस के बिना जाने मनुष्य कुछ लिख नहीं सकता यदि साहस करके जोसि लिखने का कुछ डौल डाल बांधे तो सुडौल नहीं होता बरन उसकी हंसी का कारन बन जाता है इस से संस्कृत की कहावत ठीक जान पड़ती है कि "शतंवद मा लिख" क्योंकि लिखा हुआ कुम्हार के आवे में पके बासन सा अमिट होता है ।

यद्यपि इस ठौर लेख के सब गुण लिखने का प्रयोजन नहीं है तो भी इतना अवश्य होता है कि साधारन रीति से थोड़ा सा बरनन किया जाय जिसमें लेख के कुछ मुख्य २ गुन प्रकाशित हों ।

लेख के मुख्य दो भेद समझने चाहियें एक तो ऐसा होता है जिसमें छोटे २ शब्द सांचे के ढले अत्यन्त कोमल सरस और सहज होते हैं कोई ऐसा शब्द नहीं मिलता कि जिस के बोलने में जीभ को ऐंठना उमेंठना वा मुसलमान के अज़ान के समान घड़ियों मुंह बाना वा तैलंग और करनाटक की भांति लोटे में कौड़ियां डाल के खड़खड़ाना पड़े और कानकी झिल्ली दरक जाय सुनने वाले का जी करक उठे और जैसा शब्द वा वाक्य सुने वैसा अपना मुंह और नाक सिकोड़े भौंवें चढ़ावे और ठीक वैसाही भयानक आपसे आप बनना पड़े क्योंकि लेख का गुन मनुष्य के मन को अपनी परछांहीं बना लेता है फिर अलंकार शब्द लालित्य यमक

अनुप्रास आदि अनेक गुन पदों में रहते हैं ऐसेही उपमा उत्प्रेक्षा रूपक प्रतीप अतिशयोक्ति रस रसाभास भाव रति आदि बहुत से गुन अर्थ के होते हैं इन गुनों में भरे हुए वाक्य को काव्य कहते हैं जैसे रामायण रघुवंश नैषध आदि इसी प्रकार गद्य में कादम्बरी वासवदत्ता आदि अनेक ग्रंथ कवियों ने रचे हैं। पण्डितों की बोली से कवियों की बोली मीठी और सरस होती है देखो किसी पण्डित को यह बहुत बुरा लगा कि राजा भोज कवियों को एक २ श्लोक का लाख २ रुपया बरन इससे भी अधिक दिया करते थे पण्डितों को इतना कदापि नहीं मिलता था इसी पर क्रोध करके किसी पण्डित ने राजा भोज से कहा कि क्यों हम लोगों का उतना आदर सत्कार नहीं होता जितना कि कवियों का किया जाता है और दक्षिणा भी उतनी हम लोगों को नहीं मिलती जितनी कवियों को दी जाती है क्या अपराध हम लोगों का आपने समझा है और कौनसी योग्यता हम से बढ़कर कवियों की आपने देखी है भोज ने उत्तर दिया कि मुझे आप लोगों के आदर सत्कार करने में किसी प्रकार की रुकावट नहीं है मैं तो योग्यता के अनुसार सब का आदर सत्कार करता हूं श्लोक की कौन कहे एक शब्द के लिये तीन २ लाख रुपया और दस २ हाथी दे डालता हूं यदि उस में किसी प्रकार का कोई गुन देखता हूं। जैसे लक्षं लक्षं पुनर्लक्षं मत्ताश्च दश दन्तिनः। दत्ताः श्रीभोजराजेन जानुदघ्नप्रभाषिणे। भला आप तो इसपर कोई श्लोक कहिये कि सामने एक लकड़ी पड़ी है पण्डित जी ने कहा कि वाह म-

हारा ॥ भली कहो जब इतना भी हम लोगों से न होसकेगा तो हम लोग किस बात के पण्डित ठहरे लीजिये बन गया "शुष्कं काष्ठं तिष्ठत्यग्रे" फिर राजा ने किसी कवि की ओर देखा कवि ने इसी पर कहा कि "नीरस तरुरिह विलसति पुरतः" अब देखना चाहिये कि इन दोनों में कुछ अन्तर है वा नहीं पण्डित जी बुरा अपना सा मुंह लेकर चलते हुए ठीक किसी ने कहा था कि "जट रे जाट तेरे सिरपर खाट" उसने उत्तर दिया "तेली रे तेली तेरे सिरपर कोल्हू" तेली बोला तुक न मिला जाट ने जवाब दिया कि तुक मिले चाहे मत मिले बोझों तो मरोगे बस अब अधिक लिखने का कुछ काम नहीं इतने में सब समझ लेना चाहिये ॥

दूसरा भेद लेख का वह है जिस में इस बात का नियम रहता है कि कोई पद पूर्वोक्त शब्द और अर्थ के गुन से रहित हो चाहे सहित परन्तु वाक्य में कोई शब्द ऐसा न पड़े जिस में का एक भी अक्षर व्यर्थ निकल जाय या जिस अर्थ के लिये दिया गया है चिपक के न बैठे अथवा उस से अच्छा शब्द कभी कोई न पासके चाहै वह शब्द कड़ा हो वा कोमल केवल अर्थ की मुख्यता पर ध्यान रखना पड़ता है इस बात का विचार भी कम किया जाता है कि शब्द बहुत बड़े हों या बहुत छोटे सुडौल हों वा कुडौल अर्थात् जो लक्षण बनावें उस में किसी प्रकार का दोष और कमी न पावें जैसे व्याकरण न्याय वैद्यक ज्योतिष इत्यादि प्रसिद्ध हैं ।

प्रकाश ।

प्रकाश की प्रकृति अभीतक ठीक २ नहीं मालूम हुई पूर्व समय के विद्वान समझते थे कि यह बहुत से छोटे छोटे परमा

णुओं से बनता है जो तेजोमय पदार्थ जैसा सूर्य वा जलती हुई अग्नि इत्यादि से निकला करते हैं। आज कल के विद्वान ध्वनि के समान इस की भी उत्पत्ति तरंग सदृश गति (waving motion) से मानते हैं। जैसा एक पत्थर किसी कुण्ड में फेंको तो उस में मण्डलाकार लहरें चारो ओर से उठने लगती हैं इसी तरह की लहरें जो वायु में उत्पन्न हुआ करती है उसी से ध्वनि की उत्पत्ति है ऐसाही प्रकाश की उत्पत्ति भी इसी प्रकार की तरङ्गों से है जो उर्द्ध गत सूक्ष्म वायु (Ether) में उठा करती हैं, ईथर एक गुरुत्व शून्य सूक्ष्म पदार्थ है जिस्से दो वस्तुओं का अन्तर सदा व्यापता रहता है और यह ऐसा पतला है कि जब उस तरङ्गित गति जिस्से प्रकाश की उत्पत्ति है उस में कुछ रोकाव पड़ जाता है तो इसकी चमक हजारों मील दूर उड़जाती है। ध्वनि की अपेक्षा प्रकाश की गति अति शीघ्र है बन्दूक के छूटने पर ध्यान देनेसे यह बात अच्छी तरह से मालूम होसकती है जब कि हम बन्दूक के छूटतेही देखते हैं पर उसके छूटने का शब्द दो या एक सेकण्ड के बाद हमारे कान में आता है इस से प्रगट होता है कि इसके छूटने का शब्द इस कारण चमक के साथही हमें नहीं सुन पड़ता क्योंकि गति में यह प्रकाश के पीछे पड़ जाता है। इसतरह हम जान सकते हैं कि ध्वनि और प्रकाश दोनों को हम तक आनेमें कुछ समय लगता है किन्तु प्रकाश की गति ध्वनि की अपेक्षा बहुत शीघ्र है। प्रकाश की गति एक सेकण्ड में १८६००० मील होती है और ध्वनि एक सेकण्ड में केवल ११०० फिट जा सकती है सूर्य और पृथ्वी का अन्तर ९ करोड़ ५० लाख मील का है किन्तु सूर्य का

प्रकाश हम तक ८ मिनिट में पहुंच जाता है और सूर्य अस्त होने पर ८ मिनिट तक बना रहता है जैसा ध्वनि किसी पक्के मकान में बाहर निकल जाने के लिए वायु की सहायता न पाकर फिर हमतक लौट आती है जिसे गुंजाहट या प्रति ध्वनि कहते हैं वैसेही प्रकाश भी जब किसी पालिश किए हुए धातु के टुकड़े या गलास इत्यादि पर पड़ता है तो उसमें टक्कर खाय पीछे को लौट आता है, प्रकाश भी हम लोगों के जीवन का वैसाही उपयोगी है जैसा उष्णता। और सृष्टि क्रम में सब के पूर्व इस की उत्पत्ति हो तब और २ भौतिक पदार्थ सृजे गए हैं॥

गुरु शिक्षा।

अकसर लोग समझते हैं कि हर शख्स अगर कुछ भी पढ़ा लिखा हो लड़कों के पढ़ाने और स्कूल के बन्दोबस्त करने के योग्य है इस कारण चाहे और किसी नौकरी के लायक होया न हो मुदर्रिसी के योग्य तो अवश्य है। बहुत लोग ऐसा भी विचारते हैं कि जो लोग विद्वान और पण्डित हैं वे तो ज़रूर मुदर्रिस होने के लायक़ हैं क्योंकि अपनी विद्या के बल से ये लोग बहुत अच्छी तरह से लड़कों को पढ़ा सकेंगे और बखूबी मुदर्रिसी का इन्तज़ाम कर सकेंगे। ये दोनों मत निहायत कच्चे हैं, मुदर्रिस होना बड़ा कठिन काम है। इसके लिये भी और कामों की तरह शिक्षा ज़रूरी चाहिये क्योंकि कोई कैसाही विद्वान क्यों न हो ज़रूर नहीं कि अपनी विद्या दूसरों को इसतरह पर देसके कि उनके समझ में आवे। इसलिये वे लोग जिन्होंने इन बातों को बड़े परिश्रम और विचार से दरयाफ़्त किया है इस नतीजे को पहुंचे हैं

कि जैसे और कामों के लिये लोग अपने लड़कों को पढ़ाते और तैयार करते हैं उसी तरह मुदर्रिसों के लिये भी उनको तैयार करना चाहिये । जैसे अगर कोई शख़्स अपने लड़के को डाक्टरी या वकालत या और किसी काम के लिये तैयार किया चाहता है तो उसे वही विद्या पढ़ावेगा जिससे वह अपने मनोर्थ को पहुंचे, इसी तरह अगर कोई आदमी मुदर्रिस होना चाहे तो उसे भी पढ़ाने का ढंग सीखना उचित है । यहां पर हम थोड़ी सी बातें उन लोगों के लिये लिखते हैं जो मुदर्रिस हैं या होना चाहते हैं ।

मुदर्रिस को विद्या में निपुन होना चाहिये, मगर जैसा हम आगे कह चुके हैं केवल विद्या से कुछ नहीं होसकता बरन और गुन भी मुदर्रिस में होने ज़रूर हैं जिनको हम क्रम से लिखते हैं ।

पहला गुन सामान्य ज्ञान है क्योंकि इस के बिना काम नहीं चल सकता । बहुतेरे मुदर्रिस जिनमें विद्या और योग्यता है यह गुन बिलकुल नहीं रखते । इस गुन का यह फल है कि इस के द्वारा विचार और बुद्धि बढ़ती हैं । इससे लोग अपना चाल चलन सुधारते और अपने काम की तदबीर व बन्दोबस्त ऐसा करते हैं कि लोगों में उनकी बड़ाई होती है । ईश्वर ने जिस तरह पशु बुद्धि जानवरों को दी है उसी तरह सामान्य ज्ञान केवल मनुष्यों को दिया है । यह गुन तीक्ष्ण बुद्धि या विचार से बिलकुल अलग है क्योंकि तीक्ष्ण बुद्धि उस बड़े प्रकाश की तरह है जो एक बेर आंखों को चौंधिया कर मिट जाता है, परन्तु यह गुन उस ज्वाला की तरह है जो बराबर प्रकाशित रहे और घटे नहीं ॥

दूसरा गुन सुभाव की स्थिरता है। जिस मुदर्रिस में यह नहीं है वह न अपने शागिर्दों को सिखला सकता न उनको अच्छी तरह सुधार सकता है। उस मुदर्रिस से जिसका सुभाव हर बात में बदला करता है किसी बात का पक्का बिचार नहीं हो सकता, क्योंकि वह किसी समय एक बात का भली और फिर उसी को दूसरे समय बुरी समझेगा। नोकरी में चंचल सुभाव होने से हजारों आफ़त पैदा होती हैं और खासकर के मुदर्रिस में यह निहायत दुख देता है, क्योंकि मुदर्रिस की हर बात और हर काम शागिर्दों की आंख पर चढ़े रहते हैं, और ऐसे सुभाव से उसकी हुकूमत में खराबी आजाती है, इस सबब से कि कोई शागिर्द ऐसे मुदर्रिस के पास रहकर यह नहीं सोच सकता कि मुझ को क्या करना और किस बिषय पर ज्यादा ध्यान देना चाहिये। इससे प्रगट है कि शागिर्दों को सदब में रखने लिये यह गुन जरूर है॥

तीसरा गुन—मुदर्रिस को यह बात बहुतही अवश्य है कि लड़कों की चाल चलन और सुभाव भली भांति समझे और बिचारे क्योंकि ये अनेक तरह के होते हैं, इस में इनके सिखलाने और सुधारने के लिये अनेक तरह के उपाय करने चाहियें। जो मुदर्रिस ऐसा बिचार नहीं करता और सब लड़कों के साथ समान रीति से ब्योहार करता है तो बहुतेरों की हानि होती है। देखो अच्छे लड़के को एक घुड़की बुरे को बहुत सी मारसे भी बढ़कर होती है। इसी तरह प्रसंसा की एक बात कितनों को साहस देती और चतुर करती है, पर बहुतेरों के लिये कोटि उपाय व्यर्थ करना पड़ता है कि जिस

में वे चौकस हों और सुधर जांय। इससे लड़कों के अनेक भांति के सुभाव मुदर्रिसों को जल्द पहिचानना चाहिये कि जिसमें लाभ सब को हो और हानि किसी को न पहुंचे। यदि यह गुण मुदर्रिस में न हो तो उसका सारा परिश्रम व्यर्थ और निष्फल हो जावेगा ॥

चौथा गुन मुदर्रिस के लिये धीरता है। शागिरदों की रुचि और अरुचि, उनकी आशा और निराशा, उनकी उपाय और सुभाव जब उत्पन्न होते हैं तो बहुधा पाठशालाओं के नियम और उन्हीं लोगों की भलाई के विरुद्ध होते हैं। ऐसी कठिनाइयों में मुदर्रिस को अपनी धीर बुद्धि से एक राह निकालनी और सचाई और न्याय से चल विचल न होना चाहिये। जो ऐसी २ बातों में मुदर्रिस अपने स्कूल के नियम और व्यवहार से फिर जावे तो उसके स्कूल का प्रबन्ध खंडबंड हो जायगा। मुदर्रिस के धीर न होने से लड़कों का अदब कायदा आदि सब जाता रहता है। लड़कों को यह सोचना चाहिये कि स्कूल के जो नियम हैं उनका अक्षर २ अङ्गीकार करना ही पड़ेगा. जो यह न हुआ तो मुदर्रिस का दबाव कहां रहा और उनकी वृद्धि कैसे होगी ॥

पांचवा गुन—मुदर्रिस को दयावान होना अवश्य है क्योंकि मनुष्य का मन ऐसा बना हुआ है कि प्रेम उसमें तुरन्त समा जाता है। मुदर्रिसों का विद्यार्थियों पर प्रेम करना उनकी भलाई का मूल है इसलिये कि उनके प्रेम के कारन लड़के भी उनसे प्रेम करते हैं और इसका फल यह होता है कि इनकी चाल चलन में जो भलाई बुराई रहती है आप से आप प्रगट हो जाती है जिससे इनके सुधारने का

एक अच्छा अवसर मिल जाता है। इस कारन मुदर्रिस को उचित है कि अपने विद्यार्थी की भलाई का केवल जुबानी जमा खरच न करे बरन उसे कर दिखावे।

छठा गुन—भली बुरी चालों का विवेक करना मुदर्रिस को बहुत जरूर है जो वह आप इन गुनों में पूरा न होगा तो पाठशाला के काम करने के योग्य नहीं, मानों वही लड़कों की बुराई का कारन हो जायगा और इसका उत्तर अपने स्वामी, देश, और ईश्वर को उसे देना पड़ेगा। और जिसे ईश्वर का डर नहीं उसमे क्या आस है कि वह अपने विद्यार्थियों को भली राह में चला सकेगा। क्योंकि इन्हें विद्या में पक्का करनेसे भलाई में चलाना अत्यन्त उत्तम है, कारन यह है कि यदि मूर्ख है और भला है तो आनन्द से अपना पालन कर सकता है, पर विद्यावान हुआ भी और बुरा निकला तो वह अवश्य बड़ा दुखड़ी भोगेगा। इससे लड़कों को वही सिखाना उचित है जो उनकी जवानी में काम आवे। यह ठीक बात है कि ईश्वर को और विद्यार्थियों को उभाड़ना और उनमें ईश्वर की आज्ञा पालन करवाना शिक्षा करनेका मुख्य फल है, इससे जो मुदर्रिस अपने विद्यार्थियों को झूठ बोलने आदि बुरी चालों से नहीं रोकता वह अवश्य इनकी हानि ही करता है। केवल पाठशाला के नियमों पर ध्यान रखनेसे काम नहीं चलता। बस जो ऊपर-लिखे हुए के अनुसार नहीं करता वह अवश्य अपने विद्यार्थी, उनके माता पिता और होने वाली सन्तान की हानि करता है।

दर्याई घोड़ा।

दर्याई घोड़ा उत्तर समुन्दर में होता है। अमेरिका देश के पास बहुत से दिखाई देते हैं।

इस का धड़ बहुत बड़ा होता है, १२ हाथ लम्बा और ८ हाथ चौड़ा। २० या ३० मन भारी होता है, बड़ा होने से ६० मन तक भारी होता है। जैसा धड़ होता है वैसाही सिर बहुत ही छोटा। सिर छोटा, गर्दन मोटी, आंखें उजली, नाक चौड़ी और चिपटी, बदन का चमड़ा मोटा, और दांत हाथ हाथ भर लांबी। दांत से पत्ते, कीड़े, मकोड़े, उठाकर खाता है। पहाड़ों में दांत घुमाकर सो रहता है। लम्बे दांत, चौड़ी नाक, उजली आंखें, बड़ी डरावनी मालूम होती हैं। पर जैसा यह जानवर देखने में डरावना है वैसा गुस्सर नहीं। किसी को भी कुछ नहीं कहता, पर हां जब कोई उस को मारने जाता है तो बड़ा खिजलाता है, अपने दुश्मन के मारने को बड़े बड़े उपाय सोचता है। अक्सर आदमी नाव पर सवार होकर इस जानवर को मारने जाते हैं। कभी कभी ऐसा भी हुआ है कि दर्याई घोड़ा पानी डूबकर अपने दांतों से नाव में सूराख़ कर देता है और सब आदमी डूबकर मर गये हैं। दर्याई घोड़ों के आपस में बड़ा मेल होता है। झुण्ड के झुंड फिरे फिरते हैं। एक पर बिपत पड़ने से सब मिलकर उस की मदद करते हैं। दर्याई घोड़े का चमड़ा, दांत, और तेल, हम लोगों के बहुत काम आता है। इसलिये हम लोग उस का शिकार करते हैं। इस जानवर के नर मादे में ऐसा मेल मिलाप है कि एक के मर जाने से दूसरा भी अपनी जान खो बैठता है। दर्याई घोड़े के बच्चे अपने मांओं को इतना मानते हैं कि मर जाने पर उस की लाश को नहीं छोड़ते! कैसी दुख की बात है कि बहुतेरे लड़के अपने मा बाप को नहीं मानते॥ उन से तो इस जानवर के बच्चे अच्छे ठहरे!

पण्डित दामोदर शास्त्री विरचित ।

निबुद्धशिक्षा (पहला भाग)	देववाणी (पहला भाग)
„ „ (दूसरा भाग)	„ „ (दूसरा भाग)
रामलीला (बालकाण्ड)	स्मृत्यर्थदीपिका (प्रथमखण्ड)
„ „ (अयोध्याकाण्ड)	„ „ (द्वितीयखण्ड)
„ „ (आरण्य काण्ड)	भाषादर्श बालव्याकरण ।

बाबू हरिश्चन्द्र की लिखे हुये काग़ज़ का उल्था

बाबू राम दीन सिंह साहिब "क्षत्रियपत्रिका" और "खड्गविलास" प्रेस बांकीपुर के मालिक !

आप को मैं अधिकार देता हूं कि मेरी पुस्तकों में से जिन को आप चाहें छापें और इस लिये कि जो पुस्तकें आप छापें उन में आप को हानि न होय यह भी आप को लिखा जाता है कि जिस विषय को आप छाप लेंगे उस को और कोई न छाप सकेगा और यदि कोई छापे तो कानून के अनुसार आप उसपर नुकसानी की नालिश करने के अधिकारी हैं और मेरी पुस्तकों के कारण जो कुछ लाभ आप को हो उससे मुझ को कोई वास्ता नहीं वह सब मुनाफ़ा क्षत्रियपत्रिका के व्यय में लगाया जाय जिसके आप स्वामी हैं ।

२३ सितम्बर सन् १८८२
बनारस । } हरिश्चन्द्र ।